International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-07-2023, Accepted: 14-08-2023, Published: 30-08-2023
Volume 9, Issue 4, 2023, Page No. 50-52

मानुषता को खात है जात–पात का रोगः रैदास

गीता पांडेय
सहायक प्रोफेसर, साहित्य अध्ययन केंद्र डॉ.बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
संत रविदास ने सामाजिक उत्थान के उन माध्यमों का अनुसरण एवं अनुसंधान किया जो लोक कल्याण और मानवता के हित मैं थे। इस विषय मैं रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है– 'उच्च–नीचता, छुआछूत, धार्मिक संघर्ष आदि का नाश करके उच्च विचारोँ से प्रेरित होकर आदर्श सामाजिक जीवन व्यतीत करना ही उनका लक्ष्य था।"[1] संत रविदास ने समाज मैं फैले वैषम्य को बहुत करीब से अनुभूत किया, वे अपनी वाणी के माध्यम से समाज कल्याण की भावना को व्यक्त किया है। मध्यकालीन भारतीय समाज अनेकानेक सामाजिक कुरीतियों में जकड़ा हुआ था, जिसमें जाति–भेद सबसे बड़ी कुरीति और विकृति के रूप में समाज में विद्यमान थी। इस कुरीति को दूर करने में उस काल के संत–कवियों की बहुत ही महत्तवपूर्ण भूमिका रही है। तत्कालीन संत कवि और समाज दोनों ही एक दूसरे के अभिन्न अंग रहे हैं। समाज के विभिन्न कोनों से ही संतों का आविर्भाव हुआ, समाज की नब्ज़ को भी संत–समाज ने ही भली भांति पहचाना। वास्तव में मनुष्य का मूल धर्म है– मानव धर्म। मानव धर्म की रक्षा का बीड़ा संतों ने उठाया, संत–समाज इस बात को भली भांति समझ चुका था कि जाति–व्यवस्था के सड़े दृगले, विषैले और खोखले वृक्ष को हटाए बिना समाज में समभाव और समरसता के वृक्ष नहीं लगाये जा सकते, संत रैदास ने यही कार्य तत्कालीन युग में किया, उन्होंने समाज के समक्ष जाति–व्यवस्था के दुष्परिणामों और दुष्प्रभावों से लोगों को अवगत कराया।

मूल शब्दः संत रविदास के समय फैली जाति व्यवस्था और उसका प्रभाव, संत रविदास द्वारा किए गए प्रयास, संत रविदास का व्यापक दृष्टिकोण

मध्यकालीन संत कवियों में सामाजिक–साहित्यिक योगदान की दृष्टि से रैदास अथवा रविदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका आविर्भाव ऐसे युग में हुआ जब समाज में जाति व्यवस्था की संकीर्णता के कारण समाज में उंच–नीच की भावना का प्रस्फुटन हो रहा था। सामाजिक सद्भाव और एकत्व की भावना निरंतर दम तोड़ रही थी। शूद्र–कुल में पैदा हुये व्यक्तियों को न तो देव स्थानों पर पूजा का अधिकार था, न ही वेद आदि ग्रन्थों को छूने का। इस कारण ब्राह्मणों और शूद्रों में मनोमालिन्य लगातार बढ़ता जा रहा था। जहाँ ऊँची जाति का व्यक्ति अपने अनैतिक और तमाम दुष्कर्मों के बावजूद सम्मान का अधिकारी था, वहीं निम्न–कुल उत्पन्न व्यक्ति सत्कर्मी–संस्कारी होते हुए भी उपेक्षित और तिरस्कृत हो रहा था। चूंकि रैदास का जन्म एक अत्यंत निम्न जाति में हुआ और स्वयं उन्होंने घृणा और तिरस्कार की पीड़ा और दंश को सहा। 'रैदास–परचई' तथा 'भक्तमाल' में जिन घटनाओं का उल्लेख मिलता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि रैदास जी का ब्राह्मणवाद एवं पुरोहितवर्ग से ज़बरदस्त संघर्ष रहा। रैदास ने तत्कालीन समाज की धार्मिक रूढ़ियों, कर्मकांडों, पुरोहित वर्ग की निरंकुशता और वितंडावाद का डटकर विरोध किया, उन्होंने अपनी सच्चरित्रता एवं तर्क–पद्धति से ऐसे भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया जो व्यापक मानव धर्म से प्रेरित, सर्वग्राही तथा सर्वसुलभ थी।

मध्यकालीन भारतीय समाज अनेकानेक सामाजिक कुरीतियों में जकड़ा हुआ था, जिसमें जाति–भेद सबसे बड़ी कुरीति और विकृति के रूप में समाज में विद्यमान थी। इस कुरीति को दूर करने में उस काल के संत–कवियों की बहुत ही महत्तवपूर्ण भूमिका रही है। तत्कालीन संत कवि और समाज दोनों ही एक दूसरे के अभिन्न अंग रहे हैं। समाज के विभिन्न कोनों से ही संतों का आविर्भाव हुआ, समाज की नब्ज़ को भी संत–समाज ने ही भली भांति पहचाना। वास्तव में मनुष्य का मूल धर्म है– मानव धर्म। मानव धर्म की रक्षा का बीड़ा संतों ने उठाया, संत–समाज इस बात को भली भांति समझ चुका था कि जाति–व्यवस्था के सड़े–गले, विषैले और खोखले वृक्ष को हटाए बिना समाज में समभाव और समरसता के वृक्ष नहीं लगाये जा सकते, संत रैदास ने यही कार्य तत्कालीन युग में किया, उन्होंने समाज के समक्ष जाति–व्यवस्था के दुष्परिणामों और दुष्प्रभावों से लोगों को अवगत कराया।

मध्ययुगीन भारत धार्मिक उतारदृचढ़ाव का युग रहा है, इस युग में फैली राजनीतिक उथल–पुथल ने समाज की स्थिति को भी शोचनीय दशा मैं पहुँचा दिया था। धर्म के क्षेत्र मैं अंधविश्वास, बाह्य–आडंबर, मूर्तिपूजा, जादू–टोना, भूत–प्रेत जैसी कुरीतियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया हुआ था। इस समय की अशिक्षित जनता हताश और निराश धार्मिक मायाजाल में लगातार फंसती चली जा रही थी। ऐसी स्थिति में दिगभ्रमित जनता को ज्ञान की रोशनी दिखाने का पूरा श्रेय संत समाज को जाता है, जिन्होंने सहज व सरल भाव से अपनी बात को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया। उनकी इस बात मैं किसी प्रकार की लाग लपेट नहीँ थी वह तो बिलकुल सीधी सच्ची बात थी जो एक हृदय (संतों) से निकलकर दूसरे (संतप्त समाज) के हृदय तक पहुंची थी।

भारत मैं विभिन्न मतों तथा धर्मों के लोगों मैं मेल–जोल और भाईचारा बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य मध्यकालीन संतोँ ने किया, इन संत कवियों में संत रविदास का नाम अग्रणी है। संत रविदास ने सामाजिक उत्थान के उन माध्यमों का अनुसरण एवं अनुसंधान किया जो लोक कल्याण और मानवता के हित मैं थे। इस विषय मे रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है– 'उच्च–नीचता, छुआछूत, धार्मिक संघर्ष आदि का नाश करके उच्च विचारोँ से प्रेरित होकर आदर्श सामाजिक जीवन व्यतीत करना ही उनका लक्ष्य था।"[1] संत रविदास ने समाज मैं फैले वैषम्य को बहुत करीब से अनुभूत किया, वे अपनी वाणी के माध्यम से समाज कल्याण की भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

'संतन के मन होत है सबके हित की बात
घट घट देखेँ अलख को, पूछे जात न पात।'[2]

रविदास जी का मानना था कि सभी मनुष्य ईश्वर की देन हैं, उनमें धर्म या जाति के आधार पर भेद करना स्वयं को अज्ञान में रखने जैसा है। जिस प्रकार गौतम बुद्ध ने जब पर–पीड़ा को अनुभूत किया तो वे परम तत्व की खोज करने निकल पड़े थे और समाज–कल्याण की ओर प्रेरित हुए, वैसे ही संत रविदास ने भी अपने समय की सामाजिक विषमताओं एवं विसंगतियों का समाधान अपनी वाणी अथवा संदेशों के माध्यम से खोजने का प्रयत्न किया। उन्होंने मानव कल्याण के लिए सत्संगति, प्रेम, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दया, नैतिकता जैसे मूल्यों की पुनर्स्थापना की। सत्संगति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं–

'साधु संगति बिना भाव नहीं उपजै, भाव भगति क्यो होई तेरी।'[3]

उनका कहना है कि सत्संगति से मनुष्य के अंदर विवेक जाग्रत होता है। मानव जैसी संगति में रहता है, उस पर वैसा ही प्रभाव पडता है। सत्संगति के प्रभाव से दुर्जन भी सज्जन बन जाता है। सत्संगति से ही भक्ति संभव हो सकती है।

मध्ययुग हिंसा, प्रति–हिंसा का युग रहा है। जहाँ पारस्परिक द्वेष, षड्यंत्र, प्रतिशोध जैसी भावनाओं ने मानवता को खंडित कर दिया था। रविदास जी ने क्षमा जैसे मूल्य को समाज में पुनर्स्थापित कर मनुष्य को एक नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। उन्होंने मनुष्य को इस सत्य से अवगत कराया कि संसार नश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। राम ही सत्य है बाकी सब व्यर्थ है–

'राम नाम जिह तन रम्यौ सोई तन आपु उजास
अन्त छार ह्वे जाइहि बेगि चेतु रैदास'[4]

रैदास के अनुसार जब तक मानव में प्रेम का उद्भव नहीं होता तब तक वह भक्ति की पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। मानव के उद्धार का मार्ग भी प्रेम ही है। प्रेम ही मुक्ति का मार्ग है–

'प्रेम भक्ति सो उघरे, प्रकटत जन रैदास'[5]

दया, परोपकार आदि नैतिक भावनाओं का विकास तथा अहंकार का त्याग आदि मूल्यों की बात कर संत रविदास जी ने मानव कल्याण की भावना को बलवती किया है। रैदास जी ने धार्मिक अंधविश्वास, कट्टरता, परंपरागत रूढ़ियों को दूर करके एक ऐसी विचारधारा का निर्धारण किया जो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के बीच के मतभेद को दूर–कर समाज में भावात्मक एकता का संदेश दिया। उन्होंने बाह्य–आडंबरों, पोंगापंथी, पाखंड, लोलुपता, धन–संचय आदि अवगुणों का विरोध कर कर्म और श्रम की प्रतिष्ठा, ईमानदारी से जीवन यापन करने, ईश्वर को देवालयों में ना खोजने बल्कि अपने अंतस में मानकर उसका भजन करने की बात कही।

उन्होंने धार्मिक क्षेत्र में फैले अंधविश्वास और बाह्य–आडंबर को दूर करने का अभूतपूर्व प्रयास किया, मूर्ति–पूजा, छापा–तिलक, आदि बाह्य विधानों का विरोध कर सीधे सच्चे मार्ग को अपनाने की बात की। उनका मानना है कि ईश्वर तो करोड़ों सूर्य से अधिक तेजवान है। उसकी आरती या हवन करने से क्या लाभ है? मूर्ति पूजा, गंगा नहाने आदि अनेक विधानों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। ईश्वर प्राप्ति हेतु अहंकार का त्याग करना आवश्यक है–

'कहा भयो नाचौ अरु गायै, कहा भयो तप कीन्है,
कहा भयो जे चरन पषाले, जो लौ परम तत्त नहि चीन्है,
कहा भयो जे मूड़ मुड़ायौ, बहु तीरथ व्रत कीन्है
स्वामी दास भगत अरू सेवग, जौ परमतत्त नही चीन्है, माथे तिलक हाथ जपमाला, जग ठगने के स्वाँग बनाया मारग छाड़ि कुमारग उहकै सांची प्रीति बिनु राम न पाया।'[6]

रविदास जी का मानना है कि भक्ति से आत्म विकास होता है, उसमें मानवीय मूल्यों का संचार होता है, जैसे–सदाचार, नैतिकता, आत्मसंयम आदि । उनका मानना था कि पंच विकारों को त्यागकर ही भक्ति की जा सकती है। उन्होंने समाज में फैले असंतोष और धन–लोलुपता को त्यागने की बात की और कर्म की प्रधानता को सिद्ध किया।

'जिव्हा से औंकार भन, हत्थन सौ कर कार
राम मिलहि घर आइकर, कहि रविदास विचार।'[7]

रविदास जी कहते हैं जो मनुष्य कर्म में लीन रहता है, उसकी सुध–बुध ईश्वर स्वयं करते हैं। अतः जो मनुष्य कर्म में निरंतर रत रहता है, वही जीवन में विजेता होता है।'[8] इस प्रकार वे भक्ति के विधि विधानों का खंडन करते हैं और समाज को कर्म करते हुए भक्ति की प्रेरणा देते हैं। इसके लिए गृह त्यागने और बाह्य आडंबर को आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है। अतएव कहा जा सकता है कि संत रविदास जी में कबीर की सी तीव्रता भले ही नहीं मिलती परंतु उनके तीव्र मधुर व्यंग्य व्यक्ति के मर्म को तीव्रता से प्रभावित करते हैं।

रविदास जी अपने युग की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से पूर्णतः अवगत थे। उनका युग धार्मिक संक्रांति का युग था, इसलिए धर्म से विलग होकर समाज कल्याण की बात नहीं की जा सकती थी। उन्होंने धर्म और भक्ति के क्षेत्र में समानता और समान अधिकार की बात कही, जो समाज का पथ प्रदर्शक बन सकी। संत रविदास जी ने धर्म से संकीर्णता को मिटाने का सफल प्रयास किया। धर्म की परंपरागत कट्टरता, हठयोग जैसी रूढ़ियों में से उनका चयन किया जो समाज के हित में थीं। उन्होंने समन्वयवादी विचारधारा का सूत्रपात किया, हिंदू –मुस्लिम दोनों जातियों के बीच तादात्म्य स्थापित करने का कार्य किया।

'रैदास कोऊ अल्लइ कहइ, कोउ पुकारइ राम
केसउ क्रिस्न करीम सभ माधव मुकंदह नाम'[9]

'सामी सिरजन हार है, राम रहीम खुदाय
रैदास हमारो मोहना पावन केसो राय।'[10]

संत रविदास ने तद्युगीन परिस्थितियों के अनुकूल ऐसे व्यावहारिक समाधान खोजे जिससे समाज का दुख–दर्द और पीड़ा कम हो सके। इसके लिए उन्होंने जातिवाद और सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयास किया। श्री योगेंद्र सिंह के अनुसार 'धार्मिक क्षेत्र की संकीर्णताएँ तथा परस्पर विभेद भी अब इस नये युग में संघर्ष के विरुद्ध खडे नहीं रह सकते थे। प्रत्येक संप्रदाय तथा उसका उप –संप्रदाय अपनी स्पर्धात्मक श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वैधी रूप एवं कर्मकांड की अति में उलझता चला जा रहा था। रैदास ने उनमें से किसी का विरोध न करके उनमें से सबकी अंतरात्मा को लेकर एक समन्वित विचारधारा दी।'[11] वस्तुतः धर्म का मूल स्वर है– सभी में आपसी सौहार्द बनाए रखना। दया, सेवा, प्रेम जैसे भाव यदि धर्म में दृष्टिगत नहीं होते तो वह निरर्थक है।

संत रविदास ने वर्ण–व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया है। उन्होंने कहा है कि ईश्वर के यहाँ जाति, कुल, वंश, आचार–व्यवहार आदि के आधार पर कोई वैषम्य नहीं मिलता है। भगवान के लिए सभी समान हैं,चाहे वह ब्राह्मण है या शूद्र। यह जातिगत भेद मानव का स्वयं रचा जाल है। जिसमें वह स्वयं ही फँसकर रह जाता है। भगवान ने केवल मानव बनाया था। जाति तथा वर्ण के आधार पर हमने उसे बांटा है। वे कहते हैं–

'रैदास उपजइ सभ इक नूर ते, ब्राह्मण, मुल्ला शेख
सभ को करता एक है, सभ कूँ एक ही पेख।'[12]

'ब्राह्मण खतरी बैस सूद रैदास जनम ते नांहि,
जो चाहइ सुबरन कउ पावई करमन मांहि।'[13]

रैदास जी का मानना था कि व्यक्ति अपने कर्म से भला या बुरा होता है, जाति से नहीं। जन्म से कोई शूद्र पैदा नहीं होता, मनुष्य पैदा होता है। अतः एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में कोई भेद नहीं। इस रूप में उन्होंने वर्ण–व्यवस्था के विरूद्ध एक अभियान और आंदोलन खड़ा किया।
उन्होंने जाति को महत्त्व न देकर मानवता को महत्व दिया है–

'रैदास जात मत पूछिये, का जात का पात
ब्राह्मण, खत्री वैस सूद, सभन की इक जात।'[14]

संत रविदास ने जाति भेद का आधार ऊंच–नीच को न मानकर कर्म को माना है–

'रैदास जन्म के कारनै होत न कोउ नीच
नर कूँ नीच करि डारि है, ओछे करम की कीच।'[15]

वे कहते हैं कि गुणहीन ब्राह्मण के स्थान पर गुणवान चांडाल को पूजना श्रेष्ठ है। केवल जाति के आधार पर नीची जाति का व्यक्ति गुणहीन नहीं हो जाता। निम्न जाति का व्यक्ति ब्राह्मण से अधिक गुणवान हो सकता है।

'रैदास ब्राह्मण मत पूजिए, जऊ होवै गुणहीन।
पूजिहिं चरन चंडाल के, जऊ होवै गुन प्रवीन।। '[16]

ईश्वर के नाम भिन्न हैं, पर सभी का जन्मदाता वही है। परम–ब्रहमा, खुदा, परमात्मा, ईश्वर आदि अनेकों नाम उसे हम जानते हैं। या कहें एक धर्म में एक जाति और जाति में भी अनेक जातियों का निर्माण हम कर बैठे हैं। तत्कालीन समाज में फैली जातिगत अव्यवस्था का उदाहरण रैदास जी ने प्रस्तुत करते हुए कहा है–

'जात जात मैं जात है, ज्यों केलन के पात।
रैदास न मानुष जुड़ सकै, जौं लौं जात न जात।।'[17]

हमने जाति रूपी एक ऐसा जाल अपने चारों ओर बुन लिया है जिससे निकल पाना असंभव सा प्रतीत होता है। इसका बड़ा ही सुंदर उदाहरण रैदास जी ने दिया है– 'जात पात में जात है, ज्यों केलन के पात' अर्थात जाति–पांति को केले के पत्तों से जोड़कर प्रस्तुत किया है, जिस प्रकार केले के पत्तों में से एक पत्ता, एक पत्ते से दूसरा पत्ता निकलता जाता है, वैसे ही एक जाति से दूसरी जाति, दूसरी से तीसरी और यह प्रक्रिया चलती ही रहती है। वास्तव में मूल तो एक ही है, वह है–मानव जाति। संत रैदास ने अपने युग में जिन जातिगत चुनौतियों का सामना किया, वही चुनौतियाँ आज भी मुँह बाए खड़ी हैं। आज भी समाज जातिगत संरचना के घेरे से बाहर नहीं आ पाया है, आज भी हमें संत रैदास की महती आवश्यकता है।
रविदास जी ने जातिगत वैषम्य को मिटाकर समानता की बात कही है। गुरू नानक की भांति ही उन्होंने भी कहा है कि भगवान के लिए उसके सभी बंदे समान हैं, ऊंचे कुल मैं जन्म लेने से कोई ऊंचा नहीं हो जाता।

'ऊंचे कुल के कारनै, ब्राह्मण कोय न होय
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, रैदास कहि ब्राह्मन सोय।।'[18]

स्पष्ट है रविदास जी ने जाति को महत्त्व न देकर कर्म को महत्त्व दिया है। जिसमें वंश, परंपरा, ऊँच–नीच के लिए कोई स्थान नही है। वे सभी सत्कर्म और आपसी भाईचारे की सीख देते हैं। अन्यत्र वे कहते हैं कि जात–पात के भ्रम मैं पड़कर लोग अपनी मानवता को भूल बैठे हैं।

'जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सब लोग।
मानुषता कूँ खात हइ, रैदास जात कर रोग।। '[19]

संत रविदास ने संसार मैं किसी जाति को नहीं माना है, सभी भगवान के बनाये इंसान हैं, और इनकी एक ही जाति है, वह है– मानव जाति और उनका एक ही धर्म है– मानवता। संसार से जब तक जातिवाद खत्म नहीं होता, तब तक भावात्मक एकता नहीं हो सकती। उन्होंने समाज का मार्गदर्शन करने का भरसक प्रयत्न किया है।
समग्रतः 'मन चंगा तो कठोती में गंगा' का उद्घोष कर रैदास ने दीन–दलितों को उभारने, उनमें स्वाभिमान तथा आत्मसम्मान प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने भक्ति, साधना और आत्मोन्नति के लिए सदाचार, नैतिकता तथा आत्मसंयम का संदेश दिया। समाज–सुधार और लोक–कल्याण की जो बात रैदास ने मध्ययुग मैं कही, उसका प्रभाव हम आधुनिक युग में भी देख सकते हैं। आधुनिक युग मैं होने वाले समाज सुधार आंदोलनों को मध्ययुग की देन माना जाय तो गलत नहीं होगा। आधुनिक युग मैं महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, भीमराव अंबेडकर आदि ने भी जातिवाद का पुरजोर विरोध किया। गांधीजी के आंदोलन का प्रभाव रहा कि देश से जातिवाद को समाप्त करने की पहल हो सकी। गांधी जी के उद्गारों में हमैं संत रविदास के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। आज भी हिंदू–मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिए हमे संत रविदास की महती आवश्यकता है। रैदास ने आत्मानुभूत सत्य के प्रतिपादन के साथ–साथ सामाजिक भेदभाव, उंच–नीच की भावना को समाप्त करके परस्पर सौहार्द्य, प्रेम और भ्रातृत्व भाव का संदेश दिया, जो आज भी उद्बोधक, प्रेरक और प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ० 537–38
2. रैदास ग्रंथावली–डॉ० जगदीश शरण, पृ० 122, पद–211
3. वही–,पृ० पद–
4. वही–,पृ० 140
5. वही–,पृ० 25, पद–12
6. वही–,पृ० 155
7. वही–,पृ० 68, पद–103
8. वही–,पृ० 86, पद–133
9. वही–पृ० 66, पद–98
10. वही–पृ० 67, पद–99
11. संत रैदास– योगेंद्र सिंह–पृ० 102
12. रैदास ग्रंथावली– डॉ० जगदीश शरण, पृ० 110, पद–188
13. वही–पृ० 95, पद–157
14. वही–पृ० 67, पद–162
15. वही–पृ० 97, पद–160
16. वही–पृ० 98, पद–163
17. वही–पृ० 97, पद–162
18. वही–पृ० 100, पद–168
19. वही–पृ० 94, पद–155

सहायक ग्रंथ सूची

20. सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी संत– डॉ. प्रमिला झीबा
21. मध्यकालीन हिन्दी संत काव्यः दर्शन और मूल्यांकन–डॉ० आदित्य प्रचंडिया
22. निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका–डॉ. राम साजन पाण्डेय
23. संतों की सांस्कृतिक संसृति–डॉ० राम साजन पाण्डेय
24. निर्गुण काव्य प्रेरणा और प्रवृत्ति–डॉ० राम साजन पाण्डेय